

तेषां सद्दर्शनादीनां सम्प्राप्ते त्यागकारणे। संकष्टैरपरित्यागी भवेन्निर्वाहणं शुभम् ॥१२॥
तत्त्वार्थादिमहाशास्त्रपठने यन्मुनेः सदा। दर्शनादेः समग्रत्वं साधनं रागवर्जितम् ॥१३॥
तथाद्वैतज्ञानचारित्रतपसां मरणावधिं। निर्विघ्नेन प्राप्तं प्रोक्तं बुधैर्निस्तरणं परम् ॥१४॥
इति पंचप्रकारोक्तं श्रीमज्जैनविदांवरैः। आराधनाक्रमं प्रोक्त्वा कथ्यते तत्कथाः क्रमात् ॥१५॥

कथारम्भः—

१. पात्रकेसरिणः कथा

सम्यक्त्वोद्योतनं चक्रे प्रसिद्धः पात्रकेसरी। तच्चरित्रं प्रवक्ष्येऽहं पूर्वं सद्दर्शनश्रिये ॥१६॥
अत्रैव भरतक्षेत्रे पवित्रे श्रीजिनेशिनाम्। विचित्रैः पंचकल्याणैः सर्वभव्यप्रशमदैः ॥१७॥
निवासे सारसम्पत्तेर्देशे श्रीमगधाभिधे। अहिच्छत्रे जगच्चित्रे नागरैर्नगरे वरे ॥१८॥
पुण्यादवनिपालाख्यो राजा राजकलान्वितः। प्राज्यं राज्यं करोत्युच्चैर्विप्रैः पञ्चशतैर्वृतः ॥१९॥
विप्रास्ते वेदवेदाङ्गपारगाः कुलगर्विताः। कृत्वा सन्ध्याद्वये सन्ध्यावन्दनां च निरन्तरम् ॥२०॥

निर्वाहण—कभी कोई ऐसा बलवान् कारण उपस्थित हो जाये, जिससे सम्यग्दर्शनादि के छोड़ने की नौबत आ जाये तो उस समय अनेक तरह के कष्ट उठाकर भी उन्हें न छोड़ना निर्वाहण है ॥१२॥

साधन—तत्त्वार्थादि महाशास्त्र के पठन के समय जो मुनियों के उक्त दर्शनादि की राग रहित पूर्णता होना वह साधन है ॥१३॥

निस्तरण—इन दर्शनादि का मरणपर्यन्त निर्विघ्न पालन करना वह निस्तरण है। इस प्रकार जैनाचार्यों ने आराधना का क्रम पाँच प्रकार बतलाया है। उसे हमने लिख दिया। अब हम उनकी क्रम से कथा लिखते हैं ॥१४-१५॥

१. पात्रकेसरी की कथा

पात्रकेसरी आचार्य ने सम्यग्दर्शन का उद्योत किया था। उनका चरित मैं कहता हूँ, वह सम्यग्दर्शन की प्राप्ति का कारण है ॥१६॥

भगवान् के पंचकल्याणकों से पवित्र और सब जीवों को सुख के देने वाले इस भारतवर्ष में एक मगध नाम का देश है। वह संसार के श्रेष्ठ वैभव का स्थान है। उसके अन्तर्गत एक अहिच्छत्र नाम का सुन्दर शहर है। उसकी सुन्दरता संसार को चकित करने वाली है ॥१७-१८॥

नगरवासियों के पुण्य से उसका अवनिपाल नाम का राजा बड़ा गुणी था, सब राजविद्याओं का पण्डित था। अपने राज्य का पालन वह अच्छी नीति के साथ करता था। उनके पास पाँच सौ अच्छे विद्वान् ब्राह्मण थे। वे वेद और वेदांग के जानकार थे। राजकार्य में वे अवनिपाल को अच्छी सहायता देते थे। उनमें एक अवगुण था, वह यह कि उन्हें अपने कुल का बड़ा घमण्ड था। उससे वे

विनोदेन जगत्पूज्यश्रीमत्पार्श्वजिनालये। दृष्ट्वा पार्श्वजिनं पूतं प्रवर्तन्ते स्वकर्मसु ॥२१॥
 एकदा ते तथा कृत्वा सन्ध्यायां वन्दनां द्विजाः। जिनं द्रष्टुं समायाताः कौतुकाज्जिनमन्दिरे ॥२२॥
 देवागमाभिधं स्तोत्रं पठन्तं मुनिसत्तमम्। चारित्रभूषणं तत्र श्रीमत्पार्श्वजिनाग्रतः ॥२३॥
 दृष्ट्वा सम्पृष्ट्वानित्यं तन्मुख्यः पात्रकेसरी। स्वामिन्निमं स्तवं पूतं बुध्यसे स मुनिस्ततः ॥२४॥
 नाहं बुध्येऽर्थतश्चेति संजगौ प्राह सद्भिजः। पुनः भो मुने सम्पठ स्तोत्रं यतिसत्तमं ॥२५॥
 ततस्तेन मुनीन्द्रेण देवागमनसंस्तवः। पठितः पदविश्रामैः सतां चेतोनुरञ्जनैः ॥२६॥
 शब्दतश्चैकसंस्थत्वात्तदासौ पात्रकेसरी। हेलया मानसे कृत्वा देवागमनसंस्तवम् ॥२७॥
 तदर्थं चिन्तयामास स्वचित्ते चतुरोत्तमः। ततो दर्शनमोहस्य क्षयोपशमलब्धितः ॥२८॥
 यदुक्तं श्रीजिनेन्द्रस्य शासने वस्तुलक्षणम्। जीवाजीवादिकं सत्यं तदैवात्र त्रिविष्टपे ॥२९॥
 नान्यथेति समुत्पन्नजैनतत्त्वार्थसद्बुचिः। गत्वा गृहे पुनर्धीमान् स विप्रो वस्तुलक्षणम् ॥३०॥
 चित्ते सञ्चिन्तनं कुर्वन् रात्रौ विप्रकुलाग्रणीः। जीवाजीवादिकं वस्तु प्रमेयं जिनशासने ॥३१॥
 तत्त्वज्ञानं प्रमाणं च प्रोक्तं तत्त्वार्थवेदिभिः। लक्षणं नानुमानस्य भाषितं तच्च कीदृशम् ॥३२॥

सबको नीची दृष्टि से देखा करते थे। वे प्रातःकाल और सायंकाल नियमपूर्वक अपना सन्ध्यावन्दनादि नित्यकर्म करते थे। उनमें एक विशेष बात थी, वह यह कि वे जब राजकार्य करने को राजसभा में जाते, तब उसके पहले कौतूहल से पार्श्वनाथ जिनालय में श्रीपार्श्वनाथ की पवित्र प्रतिमा का दर्शन कर जाया करते थे ॥१९-२१॥

एक दिन की बात है कि वे जब अपना सन्ध्यावन्दनादि नित्यकर्म करके जिनमन्दिर में आए तब उन्होंने एक चारित्रभूषण नाम के मुनिराज को भगवान् के सम्मुख देवागम नाम का स्तोत्र का पाठ करते देखा। उन सबमें प्रधान पात्रकेसरी ने मुनि से पूछा—क्या आप इस स्तोत्र का अर्थ भी जानते हैं? सुनकर मुनि बोले—मैं इसका अर्थ नहीं जानता। पात्रकेसरी फिर बोले—साधुराज, इस स्तोत्र को फिर तो एक बार पढ़ जाइए। मुनिराज ने पात्रकेसरी के कहे अनुसार धीरे-धीरे और पदान्त में विश्रामपूर्वक फिर देवागम को पढ़ा, उसे सुनकर लोगों का चित्त बड़ा प्रसन्न होता था ॥२२-२६॥

पात्रकेसरी की धारणाशक्ति बड़ी विलक्षण थी। उन्हें एक बार के सुनने से ही सबका सब याद हो जाता था। देवागम को भी सुनते ही उन्होंने याद कर लिया। जब वे उसका अर्थ विचारने लगे, उस समय दर्शनमोहनीय कर्म के क्षयोपशम से उन्हें यह निश्चय हो गया कि जिन भगवान् ने जो जीवादिक पदार्थों का स्वरूप कहा है, वही सत्य है और अतिरिक्त सत्य नहीं है। इसके बाद वे घर पर जाकर वस्तु का स्वरूप विचारने लगे। सब दिन उनका उसी तत्त्वविचार में बीता। रात को भी उनका यही हाल रहा। उन्होंने विचार किया—जैनधर्म में जीवादिक पदार्थों को प्रमेय—जानने योग्य माना है और तत्त्वज्ञान—सम्यग्ज्ञान को प्रमाण माना है। पर क्या आश्चर्य है कि अनुमान प्रमाण का लक्षण कहा ही नहीं गया, यह क्यों? जैनधर्म के पदार्थों में उन्हें कुछ सन्देह हुआ, उससे उनका चित्त व्यग्र हो उठा।

श्रीमज्जिनमतेऽस्तीति सन्देहव्यग्रमानसः। यावत्सन्तिष्ठते तावन्निजासनसुकम्पनात् ॥३३॥
 पद्मावत्या महादेव्या तत्रागत्य ससम्भ्रमम्। देव्या त्वं भणितस्तूर्णं भो धीमन्यात्रकेसरिन् ॥३४॥
 प्रातः श्रीपार्श्वनाथस्य दर्शनादेव निश्चयः। लक्षणे चानुमानस्य सम्भविष्यति ते तराम् ॥३५॥
 इत्युक्त्वा संल्लिखत्वेति पार्श्वेशफणमण्डपे। सा गता ह्यनुमानस्य लक्षणं श्लोकमुत्तमम् ॥३६॥
 “अन्यथानुपपन्नत्वं यत्र तत्र त्रयेण किम्। नान्यथानुपपन्नत्वं यत्र तत्र त्रयेण किम्॥”
 देवतादर्शनादेव सञ्जाता तस्य शर्मदा। श्रीमज्जैनमते श्रद्धा भवभ्रमणनाशिनी ॥३७॥
 प्रभाते परमानन्दात्पार्श्वनाथं प्रपश्यतः। फणाटोपेऽनुमानस्य लक्षणश्लोकदर्शनात् ॥३८॥
 जातस्तल्लक्षणोत्कृष्टनिश्चयश्च द्विजन्मनः। भास्करस्योदये जाते न तिष्ठति तमो यथा ॥३९॥

इतने ही में पद्मावती देवी का आसन कम्पायमान हुआ। वह उसी समय वहाँ आई और पात्रकेसरी से उसने कहा—आपको जैनधर्म के पदार्थों में कुछ सन्देह हुआ है, पर इसकी आप चिन्ता न करें। आप प्रातःकाल जब जिन भगवान् के दर्शन करने को जायेंगे तब आपका सब सन्देह मिटकर आपको अनुमान प्रमाण का निश्चय हो जायेगा। पात्रकेसरी से इस प्रकार कहकर पद्मावती जिनमन्दिर गई और वहाँ पार्श्वजिन की प्रतिमा के फण पर एक श्लोक लिखकर वह अपने स्थान पर चली गई, वह श्लोक यह था ॥२७-३६॥

अर्थात्—जहाँ पर अन्यथानुपपत्ति है, वहाँ हेतु के दूसरे तीन रूप मानने से क्या प्रयोजन है? तथा जहाँ पर अन्यथानुपपत्ति नहीं है, वहाँ हेतु के तीन रूप मानने से भी क्या फल है? भावार्थ—साध्य के अभाव में न मिलने वाले को ही अन्यथानुपपन्न कहते हैं। इसलिए अन्यथानुपपत्ति हेतु का असाधारण रूप है किन्तु बौद्ध इसको न मानकर हेतु के १. पक्षेसत्त्व, २. सपक्षेसत्त्व, ३. विपक्षाद्व्यावृत्ति ये तीन रूप मानता है, सो ठीक नहीं है क्योंकि कहीं—कहीं पर त्रैरूप्य के न होने पर अन्यथानुपपत्ति के बल से हेतु सद्हेतु होता है और कहीं—कहीं पर एक त्रैरूप्य के होने पर भी अन्यथानुपपत्ति के न होने से हेतु सद्हेतु नहीं होता। जैसे मुहूर्त के अनन्तर शकट का उदय होगा क्योंकि अभी कृतिका का उदय है। यहाँ पर पक्षेसत्त्व न होने पर भी अन्यथानुपपत्ति के बल से हेतु सद्हेतु है और ‘गर्भस्थ पुत्र श्याम होगा’ क्योंकि यह मित्र का पुत्र है। यहाँ पर त्रैरूप्य के रहने पर भी अन्यथानुपपत्ति के न होने से हेतु सद्हेतु नहीं होता।

पात्रकेसरी ने जब पद्मावती को देखा तब ही उनकी श्रद्धा जैनधर्म में खूब दृढ़ हो गई थी, जो कि सुख देने वाली और संसार के परिवर्तन का नाश करने वाली है। पश्चात् जब वे प्रातःकाल जिनमन्दिर गए और श्रीपार्श्वनाथ की प्रतिमा पर उन्हें अनुमान प्रमाण का लक्षण लिखा हुआ मिला तब तो उनके आनन्द का कुछ पार नहीं रहा। उसे देखकर उनका सब सन्देह दूर हो गया। जैसे सूर्योदय होने पर अन्धकार नष्ट हो जाता है ॥३७-३९॥

ततोऽसौ ब्राह्मणाधीशाः पवित्रः पात्रकेसरी। प्रहर्षाञ्चितसर्वाङ्गो जिनधर्ममहारुचिः ॥४०॥
 देवोर्हन्नेव निर्दोषः संसाराम्भोधितारकः। अयमेव महाधर्मो लोकद्वयसुखप्रदः ॥४१॥
 एवं दर्शनमोहस्य क्षयोपशमयोगतः। अभूदुत्पन्नसम्यक्त्वरत्नरञ्जितमानसः ॥४२॥
 तथानिशं जिनेन्द्रोक्तं तत्त्वं त्रैलोक्यपूजितम्। पुनःपुनर्महाप्रीत्या भावयन्पात्रकेसरी ॥४३॥
 तैर्द्विजैर्भणितश्चैवं किं मीमांसादिकं त्वया। त्यक्त्वा संस्मर्यते जैनमतं नित्यमहो हृदि ॥४४॥
 तच्छ्रुत्वा भणितास्तेन ते विप्रा वेदगर्विताः। अहो द्विजा जिनेन्द्राणां मतं सर्वमतोत्तमम् ॥४५॥
 अतः कारणतः कष्टं त्यक्त्वा मिथ्याकुमार्गकम्। भवद्विश्चापि विद्वद्भिः संग्राह्यं जैनशासनम् ॥४६॥
 ततो राजादिसान्निध्ये पात्रकेसरिणा मुदा। जित्वा सर्वद्विजांस्तांश्च विवादेन स्वलीलया ॥४७॥
 सामर्थ्यं शासनं जैनं त्रैलोक्यप्राणिशर्मदम्। स्वसम्यक्त्वगुणं सारं सम्प्रकाशय पुनः पुनः ॥४८॥

इसके बाद ब्राह्मण-प्रधान, पुण्यात्मा और जिनधर्म के परम श्रद्धालु पात्रकेसरी ने बड़ी प्रसन्नता के साथ अपने हृदय में निश्चय कर लिया कि भगवान् ही निर्दोष और संसाररूपी समुद्र से पार कराने वाले देव हो सकते हैं और जिनधर्म ही दोनों लोक में सुख देने वाला धर्म हो सकता है। इस प्रकार दर्शनमोहनीय कर्म के क्षयोपशम से उन्हें सम्यक्त्वरूपी परम रत्न की प्राप्ति हो गई, उससे उनका मन बहुत प्रसन्न रहने लगा ॥४०-४२॥

अब उन्हें निरंतर जिनधर्म के तत्त्वों की मीमांसा के सिवा कुछ न सूझने लगा—वे उनके विचार में मग्न रहने लगे। उनकी यह हालत देखकर उनसे ब्राह्मणों ने पूछा—आज कल हम देखते हैं कि आपने मीमांसा, गौतमन्याय, वेदान्त आदि का पठन-पाठन बिल्कुल ही छोड़ दिया है और उनकी जगह जिनधर्म के तत्त्वों का ही आप विचार किया करते हैं, यह क्यों? सुनकर पात्रकेसरी ने उत्तर दिया—आप लोगों को अपने वेदों का अभिमान है, उस पर ही आपका विश्वास है, इसलिए आपकी दृष्टि सत्य बात की ओर नहीं जाती पर मेरा विश्वास आपसे उल्टा है, मुझे वेदों पर विश्वास न होकर जैनधर्म पर विश्वास है, वही मुझे संसार में सर्वोत्तम धर्म दिखता है। मैं आप लोगों से भी आग्रहपूर्वक कहता हूँ कि आप विद्वान् हैं, सच झूठ की परीक्षा कर सकते हैं, इसलिए जो मिथ्या हो, झूठा हो, उसे छोड़कर सत्य को ग्रहण कीजिए और ऐसा सत्यधर्म एक जिनधर्म ही हैं; इसलिए वह ग्रहण करने योग्य है ॥४३-४६॥

पात्रकेसरी के इस उत्तर से उन ब्राह्मणों को सन्तोष नहीं हुआ। वे इसके विपरीत उनसे शास्त्रार्थ करने को तैयार हो गए। राजा के पास जाकर उन्होंने पात्रकेसरी के साथ शास्त्रार्थ करने की प्रार्थना की। राजाज्ञा के अनुसार पात्रकेसरी राजसभा में बुलवाए गए। उनका शास्त्रार्थ हुआ। उन्होंने वहाँ सब ब्राह्मणों को पराजित कर संसार पूज्य और प्राणियों को सुख देने वाले जिनधर्म का खूब प्रभाव प्रकट किया और सम्यग्दर्शन की महिमा प्रकाशित की ॥४७-४८॥

कृतोऽन्यमतविध्वंसो जिनेन्द्रगुणसंस्तुतिः। संस्तवः परमानन्दात्मसमस्तसुखदायकः ॥४९॥
पात्रकेसरिणं दृष्ट्वा ततः सर्वगुणाकरम्। सारपण्डितसन्दोहसमर्चितपदद्वयम् ॥५०॥
ते सर्वेऽवनिपालाद्यास्त्यक्त्वा मिथ्यामतं द्रुतम्। भूत्वा जैनमतेऽत्यन्तं संसक्ताः शुद्धमानसाः ॥५१॥
गृहीत्वा सारसम्यक्त्वं संसाराम्भोधितारणम्। प्राप्य श्रीजैनसद्धर्मं स्वमोक्षसुखकारणम् ॥५२॥
त्वं भो द्विजोत्तम श्रीमज्जैनधर्मे विचक्षणः। त्वमेव श्रीजिनेन्द्रोक्तसारतत्त्वप्रवीक्षणः ॥५३॥
त्वं श्रीजिनपादाब्जसेवनैकमधुव्रतः। इत्युच्चैः स्तवनाद्यैस्तं पूजयन्ति स्म भक्तितः ॥५४॥

पञ्चभिः कुलकम्।

इत्थं श्रीशिवशर्मदं शुचितरं सम्यक्त्वमुद्योतनं कृत्वा प्राप नरेन्द्रपूजनपदं पात्रादिकः केसरी।
अन्यश्चापि जिनेन्द्रशासनरतः सद्दर्शनोद्योतनं भक्त्या यस्तु करोति निर्मलयशाः स स्वर्गमोक्षं भजेत् ॥५५॥
सत्कुन्देन्दुविशुद्धकीर्तिकलिते श्रीकुन्दकुन्दान्वये श्रीभट्टारकमल्लिभूषणगुरुभ्रातुः सदादेशतः।
सूरिश्रीश्रुतसागरस्य सुधियः सम्यक्त्वरत्नश्रिये सान्निध्ये शुचि सिंहनन्दिसुमुनेश्चक्रे मयेदं शुभम् ॥५६॥
इति कथाकोशे सम्यक्त्वद्योतिनी पात्रकेसरिणः कथा समाप्ता।

उन्होंने एक जिनस्तोत्र बनाया, उसमें जिनधर्म के तत्त्वों का विवेचन और अन्यमतों के तत्त्वों का बड़े पाण्डित्य के साथ खण्डन किया गया है। उसका पठन-पाठन सबके लिए सुख का कारण है। पात्रकेसरी के श्रेष्ठ गुणों और अच्छे विद्वानों द्वारा उनका आदर सम्मान देखकर अविनिपाल राजा ने तथा उन ब्राह्मणों ने मिथ्यामत को छोड़कर शुभ भावों के साथ जैनमत को ग्रहण कर लिया ॥४९-५१॥

इस प्रकार पात्रकेसरी के उपदेश से संसार समुद्र से पार करने वाले सम्यग्दर्शन को और स्वर्ग तथा मोक्ष के देने वाले पवित्र जिनधर्म को स्वीकार कर अविनिपाल आदि ने पात्रकेसरी की बड़ी श्रद्धा के साथ प्रशंसा की, कि द्विजोत्तम, तुमने जैनधर्म को बड़े पाण्डित्य के साथ खोज निकाला है, तुम्हीं ने जिन भगवान् के उपदेशित तत्त्वों के मर्म को अच्छी तरह समझा है, तुम ही जिन भगवान् के चरणकमलों की सेवा करने वाले सच्चे भ्रमर हो, तुम्हारी जितनी स्तुति की जाये थोड़ी है। इस प्रकार पात्रकेसरी के गुणों और पाण्डित्य की हृदय से प्रशंसा करके उन सबने उनका बड़ा आदर सम्मान किया ॥५२-५४॥

जिस प्रकार पात्रकेसरी ने सुख के कारण, परम पवित्र सम्यग्दर्शन का उद्योतकर उसका संसार में प्रकाशकर राजाओं के द्वारा सम्मान प्राप्त किया, उसी प्रकार और भी जो जिनधर्म का श्रद्धानी होकर भक्तिपूर्वक सम्यग्दर्शन का उद्योत करेगा, वह भी यशस्वी बनकर अंत में स्वर्ग या मोक्ष का पात्र होगा ॥५५॥

कुन्दपुष्प, चन्द्र आदि के समान निर्मल और कीर्ति युक्त श्री कुन्दकुन्दाचार्य की आम्नाय में श्री मल्लिभूषण भट्टारक हुए। श्रुतसागर उनके गुरुभाई हैं। उन्हीं की आज्ञा से मैंने यह कथा श्री सिंहनन्दी मुनि के पास रहकर बनाई है। वह इसलिए कि इसके द्वारा मुझे सम्यक्त्व रत्न की प्राप्ति हो ॥५६॥

२. अकलङ्कदेवस्य कथा

अथ श्रीजिनमानम्य सर्वसत्त्वसुखप्रदम्। वक्ष्येऽकलङ्कदेवस्य ज्ञानोद्योतनसत्कथाम् ॥१॥
 अत्रैव भारते मान्यखेटाख्यनगरे वरे। राजाऽभूच्छुभतुङ्गाख्यस्तन्मन्त्री पुरुषोत्तमः ॥२॥
 भार्या पद्मावती तस्य तयोः पुत्रौ मनःप्रियौ। सञ्जातावकलङ्काख्यनिष्कलङ्कौ गुणोज्ज्वलौ ॥३॥
 नन्दीश्वरे महाष्टम्यामेकदा परया मुदा। पितृभ्यां रविगुप्ताख्यं नत्वा भक्त्या मुनीश्वरम् ॥४॥
 गृहीत्वाऽष्ट दिनान्युच्चैर्ब्रह्मचर्यं सुशर्मदम्। क्रीडया पुत्रयोश्चापि दापितं तद्व्रतं महत् ॥५॥
 ततः कैश्चिद्विनैर्दृष्ट्वा विवाहोद्यममद्भुतम्। पुत्राभ्यां भणितस्तातः किमर्थं क्रियते त्वया ॥६॥
 परिश्रमो महानेष भो पितस्तन्निशम्य सः। भवतो सद्विवाहार्थं प्राहैवं पुरुषोत्तमः ॥७॥
 तच्छ्रुत्वा कथितं ताभ्यां किं विवाहेन भो सुधीः। आवयोर्ब्रह्मचर्यं च दापितं शर्मदं त्वया ॥८॥
 पित्रोक्तं क्रीडया वत्सौ दापितं भवतोर्मया। ब्रह्मचर्यमिति श्रुत्वा प्राहतुस्तौ विचक्षणौ ॥९॥
 धर्मे व्रते च का क्रीडा ब्रीडा वा तदनन्तरम्। सम्प्राह युवयोर्दत्तं व्रतं चाष्ट दिनानि तत् ॥१०॥

२. भट्टाकलंकदेव की कथा

मैं जीवों को सुख के देने वाले जिनभगवान् को नमस्कार करके इस अध्याय में भट्टाकलंकदेव की कथा लिखता हूँ, जो कि सम्यग्ज्ञान का उद्योत करने वाली है ॥१॥

भारतवर्ष में एक मान्यखेट नाम का नगर था। उसके राजा थे शुभतुंग और उनके मन्त्री का नाम पुरुषोत्तम था। पुरुषोत्तम की गृहिणी पद्मावती थी। उसके दो पुत्र हुए। उनके नाम थे अकलंक और निकलंक। वे दोनों भाई बड़े बुद्धिमान् गुणी थे ॥२-३॥

एक दिन की बात है कि अष्टाह्निका पर्व की अष्टमी के दिन पुरुषोत्तम और उसकी गृहिणी बड़ी विभूति के साथ चित्रगुप्त मुनिराज की वन्दना करने को गए साथ में दोनों भाई भी गए। मुनिराज की वन्दना कर इनके माता-पिता ने आठ दिन के लिए ब्रह्मचर्य लिया और साथ ही विनोदवश अपने दोनों पुत्रों को भी उन्होंने ब्रह्मचर्य दिला दिया ॥४-५॥

कुछ दिनों के बाद पुरुषोत्तम ने अपने पुत्रों के ब्याह की आयोजना की। यह देख दोनों भाईयों ने मिलकर पिता से कहा—पिताजी! इतना भारी आयोजन, इतना परिश्रम आप किसलिए कर रहे हैं? अपने पुत्रों की भोली बात सुनकर पुरुषोत्तम ने कहा—यह सब आयोजन तुम्हारे ब्याह के लिए है। पिता का उत्तर सुनकर दोनों भाईयों ने फिर कहा—पिताजी! अब हमारा ब्याह कैसा? आपने तो हमें ब्रह्मचर्य दिलवा दिया था न? पिता ने कहा नहीं, वह तो केवल विनोद से दिया गया था। उन बुद्धिमान् भाईयों ने कहा—पिताजी! धर्म और व्रत में विनोद कैसा? यह हमारी समझ में नहीं आया। अच्छा आपने विनोद ही से दिया सही, तो अब उसके पालन करने में भी हमें लज्जा कैसी? पुरुषोत्तम ने फिर कहा—अस्तु! जैसा तुम कहते हो वही सही, पर तब तो केवल आठ ही दिन के लिए ब्रह्मचर्य दिया